"कबीर की काव्यकला"

क्या कबीर एक सफल कवि सिद्ध हुए हैं? क्या कबीर का काव्य वक्तव्यगत विधानों से युक्त है? ये ऐसे प्रश्न हैं जो कबीर के सम्बन्ध में प्रायः उठाये जा सकते हैं। कहा जाता है कि कबीर पढ़े लिखे नहीं थे - "मसि कागद छूयो नहीं कलम गह्यो नहीं हाथ", किन्तु उनमें विलक्षण काव्य प्रतिभा विद्यमान थी। यद्यपि कविता करना उनका उद्देश्य नहीं था तथापि वे एक उच्च कोटि के कवि थे। उनकी कविता का मूल उद्देश्य लोकहित था। यह ठीक है कि कबीर निरक्षर थे, किन्तु काव्य निर्माण के लिए जिस प्रतिभा की आवश्यकता होती है, कबीर में वह प्रभूत मात्रा में विद्यमान थी। भाषा पर उनका जबरदस्त अधिकार था। इसीलिए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उन्हें 'वाणी का डिक्टेटर' कहा है। कबीर की रचनाओं में अभिव्यंजना कौशल एवं अनुभूति की तीव्रता अपने उच्चतम शिखर पर है। उन्होंने जो अनुभव किया उसे बिना किसी लाग-लपेट के सहज शब्दावली में अभिव्यक्त कर दिया। कबीर का काव्य उपदेश मूलक है, उसमें लोक कल्याण की भावना निहित है। वे कहते हैं कि मैंने अपनी साखियों की रचना जीव को भवसागर से पार उतारने के लिए की है —

"हरिजी यहै बिचारिया साखी कहो कबीर।
भौ सागर में जीव हैं, जे कोई पकड़ै तीर॥"

इससे स्पष्ट है कि केवल कविता के लिए कविता करना कबीर का लक्ष्य नहीं था। कोरा चमत्कार प्रदर्शन का उद्देश्य लेकर वे काव्य रचना करने नहीं चले थे। हाँ इतना निश्चित है कि

LIC
भारतीय जीवन बीमा निगम
LIFE INSURANCE CORPORATION OF INDIA

उनमें विलक्षण काव्य प्रतिभा थी। वे व्यंजना, लक्षणा, वक्रोक्ति, अलंकार, रीति आदि पद्धतियों से अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त करने की क्षमता रखते थे। इसलिए अभिव्यंजना के अनेक कलात्मक तत्व उनकी कविता में अनायास ही आ गये हैं। यह तो स्वयं कबीर भी नहीं जानते होंगे कि उनके काव्य में अनेक अलंकार हैं। उक्ति की व्यंग्यपूर्ण शैलियाँ, वक्रोक्तियाँ एवं रस-व्यंजना आदि तत्व भी उसमें स्वतः आ गए हैं। उन्होंने तो ज्ञान की आँख के रूप में साखियाँ कही हैं —

"साखी आँखि ग्यान की, समुझ देखि मन माहिं।
बिनु साखी संसार का, झगरा छूटत नाहिं॥"

कबीर ने तो कविता के रूप में 'साँचा' शब्द कहा है, अब चारों युगों तक कहे जाने पर भी यदि लोग उसे नहीं समझते तो कबीर कर भी क्या सकते हैं। यह तो हृदय में विचार कर और चित्त देकर समझने की वस्तु है —

"साँचा सबद कबीर का, हृदया देखु बिचार।
चित दैकै समुझै, मोहिं कहत भये जुग चार॥"

कबीर की काव्यकला को हमें इसी परिप्रेक्ष्य में देखना होगा। कबीर की कविता में उपलब्ध काव्य-सौन्दर्य अकृत्रिम है। वह ताजमहल जैसा प्रयत्न साध्य सौन्दर्य न होकर हिमालय की रम्य पर्वत श्रेणियों का सहज सौन्दर्य है, जो अपनी गरिमा से, भव्यता से एवं मनोहरता से देखने वाले को मुग्ध कर देता है। उनकी ~~काव्य~~ काव्यगत विशेषताओं का निरूपण निम्न शीर्षकों में किया जा सकता है —

1. भाव एवं रस योजना —

कबीर का काव्य प्रयत्न साध्य नहीं है, तथापि उसमें रसगत रमणीयता

भारतीय जीवन बीमा निगम
LIFE INSURANCE CORPORATION OF INDIA

एवं भाव सौन्दर्य का अनायास विधान हुआ है। संयोग एवं वियोग शृंगार के सुन्दर चित्र कबीर के काव्य में वहाँ उपलब्ध होते हैं, जहाँ आत्मा का परमात्मा के प्रति विरह एवं मिलन की अनुभूति अभिव्यक्त हुई है। उनकी वे साखियाँ जो 'बिरह को अंग' शीर्षक में संकलित की गई हैं, वियोग शृंगार की अभिव्यक्ति करती हैं, जैसे —

"यह तन जालौं मसि करौं, ज्यूँ धूवाँ जाइ सरग्गिं।
मति वे राम दया करैं, बरसि बुझावै अग्गि ॥"

यदि प्रिय उसे एक बार मिल जाय तो वह उन्हें नेत्रों की कोठरी में पुतली का पलंग बिछाकर और पलकों की चिक डालकर इस तरह कैद कर लेगी कि प्रियतम उस पर रीझकर कहीं और नहीं जायेगा —

"नैननि की करि कोठरी पुतली पलंग बिछाय।
पलकों की चिक डारि कै पिय को लिया रिझाय ॥"

विरहिणी रात-दिन विरह में तप रही है। अब विरह की यह जलन असह्य हो गई है, अतः या तो प्रिय उसे अपने दर्शन देकर उसकी आकांक्षा पूरी करे या फिर उसे मृत्यु ही दे दे —

"है बिरहिनि दूँ मींच दै, कै आपा दिखलाई।
आठ पहर का दाझणाँ, मोपै सह्या न जाई ॥"

इसी प्रकार संयोग शृंगार के भावाकर्षक चित्र उन स्थलों पर हैं, जहाँ आत्मा-परमात्मा के मिलन सुख का चित्रण किया गया है। जीवात्मा रूपी दुलहिनी परमात्मा रूपी पति की प्रतीक्षा अत्यन्त उत्कण्ठा से कर रही थी। आज मिलन का वह अवसर आ गया है —

"दुलहिनी गावहु मंगलचार।
हम घरि आए हो राजा राम भरतार।
तन रति करि मैं, मन रति करिहूँ पँचतत बाराती।
राम देव मोरै पाहुनै आए, मैं जोबन मैमाती ॥"

कबीर के काव्य में शांत रस की व्यंजना भी प्रमुखता से हुई है। निर्वेद या वैराग्य भाव से युक्त होकर कबीर ने नश्वर संसार के प्रति विरक्ति भाव इन पंक्तियों में व्यक्त किया है —

"यह ऐसा संसार है जैसे सेंवल फूल।
दिन दस के ब्यौहार कौं झूठै रंगि न भूल॥"

कबीर की उलटबासियों से जो आश्चर्य भाव अभिव्यक्त होता है, उससे अद्भुत रस की सृष्टि हुई है, जैसे इस साखी में —

"समन्दर लागी आगि, नदियाँ जलि कोइला भई।
देखि कबीरा जागि, मंछी रूषां चढ़ि गई॥"

इस तरह स्पष्ट है कि रस व्यंजना की दृष्टि से कबीर का काव्य अत्यन्त उच्चकोटि का है और कोई यह नहीं कह सकता कि वे कवि न होकर मात्र उपदेशक थे।

2. अलंकार योजना — कबीर को भले ही अलंकार शास्त्र की जानकारी न रही हो, किन्तु उनके काव्य में अलंकारों की छटा विद्यमान है। अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने के लिए कबीर ने ~~बहुत~~ ~~बहुत~~ ~~बहुत~~ अलंकारों का सहज उपयोग किया है। कबीर के काव्य में उपलब्ध कुछ अलंकारों का उदाहरण इस प्रकार है —

रूपक — "कबीरा घोड़ा प्रेम का चेतनि चढ़ि असवार।
ग्यान खड्ग गहि काल सिरि भली मचाई मार॥"

उपमा — "पानी केरा बुदबुदा अस मानस की जात।
देखत ही छिप जाएगा, ज्यूँ तारा परभात॥"

विभावना — "पुहुप बिना एक तरवर फलिया, बिन कर तूर बजाया।"

अन्योक्ति — "काहे री नलिनी तू कुम्हिलानी।
तेरे ही नाल सरोवर पानी॥"

दृष्टान्त — "सन्त न छाड़ै सन्तई जे कोटिक मिलें असन्त।
चन्दन भुवंगम बैठिया, सीतलता न तजन्त॥"

भारतीय जीवन बीमा निगम
LIFE INSURANCE CORPORATION OF INDIA

अनुप्रास — "केशव कहि-कहि कूकिये, मत सोइए असरार।"

उक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि अलंकार कबीर के लिए साध्य मात्र है, साध्य नहीं। अनुभूति को अभिव्यक्त करने में अलंकारों ने प्रमुख भूमिका का निर्वाह किया है।

3. प्रतीक विधान — प्रतीक के द्वारा अदृश्य, अगोचर, अप्रस्तुत को प्रस्तुत, गोचर एवं दृश्य बनाकर काव्य में लाया जाता है। कबीर की आध्यात्मिक अनुभूतियाँ गुह्य हैं। जिन्हें बोधगम्य बनाने के लिए प्रतीकों का सहारा उन्हें लेना पड़ा है, यथा —

"गंगतीर मोरी खेती बारी, जमुन तीर खरिहाना।"

यहाँ इड़ा-पिंगला नाड़ियों के लिए प्रतीक रूप में गंगा-यमुना का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार अलौकिक प्रेम एवं रहस्यवादी भावना को व्यक्त करने के लिए उन्होंने दाम्पत्य प्रतीकों का प्रयोग किया है—

"सती अलन दूँ निकली, चित धरि रूकब मेख।
तन मन सौंप्या पीव कूँ, तब अन्तरि रही न रेख॥"

यहाँ 'सती' और 'पीव' क्रमशः जीवात्मा और परमात्मा के प्रतीक हैं। इसी प्रकार योग साधना से संबंधित साखियों एवं पदों में भी प्रतीकों का प्रयोग वे प्रचुरता से करते दिखाई पड़ते हैं —

"आकासे मुख औंधा कुआं पाताले पनिहारि।
ताका पांणि को हंसा पीवै बिरला आदि बिचारि॥"

यहाँ 'आकाश' सहस्रार चक्र का प्रतीक है, औंधा 'कुआं' ब्रह्मरंध्र का, 'पाताल' मूलाधार चक्र का, ब्रह्मरंध्र से झरने वाला पानी अमृत का प्रतीक है और 'हंस' जीवन्मुक्त आत्मा का प्रतीक है।

4. छन्द विधान — कबीर की साखियाँ दोहा छन्द में हैं, 'रमैनी' में कुछ चौपाइयों के बाद एक दोहा है,

जबकि 'सबद' पद शैली में लिखे गए हैं। कबीर को छन्दशास्त्र की जानकारी नहीं थी, इसीलिए दोहे जैसे छन्द में भी मात्राएं कम या अधिक हैं। इसी प्रकार उनकी चौपाइयाँ भी मात्राओं की दृष्टि से शुद्ध नहीं कही जा सकतीं। कबीर के पद विभिन्न राग-रागिनियों में गाये जा सकते हैं। उनमें गेयता का तत्व विद्यमान है। कबीर ने कुछ लोक छन्दों का प्रयोग भी अपने काव्य में किया है। छन्द प्रयोग कबीर के लिए एक साधन मात्र था। उससे अधिक महत्व उन्होंने छन्द को नहीं दिया। वे कविता को गेय बनाना चाहते थे, जिससे वह लोगों की जबान पर चढ़ सके और सरलता से कण्ठस्थ हो जाए। इसमें उन्हें पूरी सफलता प्राप्त हुई है।

5. भाषा सौन्दर्य —

कबीर की भाषा मुख्य रूप से ब्रज, अवधी एवं खड़ी बोली का मिश्रण है, जिसमें कहीं-कहीं भोजपुरी, पंजाबी एवं राजस्थानी भाषा के तत्व भी उपलब्ध होते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कबीर की भाषा को पंचमेल खिचड़ी या सधुक्कड़ी भाषा कहा है, जिसमें विभिन्न बोलियों के शब्द उपलब्ध होते हैं। डॉ० बिन्दुमाधव मिश्र के अनुसार, "कबीर के पदों की भाषा प्रमुखतः ब्रज, साखियों की राजस्थानी तथा खड़ी बोली और 'रमैनी' की भाषा प्रधान रूप से अवधी है।" आचार्य श्यामसुन्दर दास का मत है कि "कबीर की भाषा का निर्णय करना टेढ़ी खीर है क्योंकि वह खिचड़ी है.... खड़ी बोली, पंजाबी, राजस्थानी, अरबी-फारसी आदि अनेक भाषाओं का पुट भी उनकी उक्तियों पर चढ़ा हुआ है।"

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने

कबीर की भाषा पर टिप्पणी करते हुए कहा है, "भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है, उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया है, बन गया तो सीधे-सीधे नहीं तो दरेरा देकर। भाषा बुद्ध कबीर के सामने लाचार सी नजर आती है।"

कबीर का ज्ञान विस्तृत था। उन्होंने पर्याप्त देशाटन भी किया था। अतः उनकी भाषा में अनेक बोलियों का सम्मिश्रण होना स्वाभाविक है। कबीर भले ही भोजपुरी क्षेत्र (बनारस) के निवासी रहे हैं, किन्तु उनकी भाषा में अनेक बोलियों के शब्द उपलब्ध होते हैं। कबीर स्वयं अपनी भाषा के विषय में कहा है—

"बोली हमरी पूरब की हमको लखै न कोय।
हमको तो सोई लखै जो पुर पूरब का होय॥"

वास्तव में कबीर की भाषा को उस काल की एक ऐसी काव्य भाषा मानना उचित होगा, जो नाथपंथी परम्परा से साधु-सन्तों के बीच चली आ रही थी और जिसमें सन्तों के व्यापक पर्यटन के फलस्वरूप अनेक क्षेत्रीय बोलियों का सम्मिश्रण हो गया था। कबीर की भाषा अकृत्रिम, सीधी-खड़ी एवं सहज भाषा है। अनुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए उन्होंने जो शब्द जहाँ से मिला उसका प्रयोग निःसंकोच भाव से किया। भाषा उनकी अनुयायिनी थी। अभिव्यक्ति का संकट उन्होंने कभी अनुभव नहीं किया। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कबीर की कविता में काव्यत्व के उपादान भी प्रभूत मात्रा में उपलब्ध होते हैं।

डॉ० राकेश कुमार
हिन्दी विभाग
शेरशाह महाविद्यालय, सासाराम, रोहतास